21वीं सदी में तुलनात्मक शासन व राजनीति : दशा व दिशा

डॉ. प्रियंका कुमारी*

सारांश : 1989 के उपरान्त पूर्ववर्ती सोवियत संघ के विघटन व साम्यवाद के विलोप के बाद तुलनात्मक अध्ययन की उपयोगिता को ही सन्देह की दृष्टि से देखा जाने लगा। तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन में नवोदित राज्यों की राजनीति को भी सम्मिलित कर लिया गया, किन्तु इससे सामान्य सिद्धान्त ढूँढ़ने में कोई मदद नहीं मिली।

तुलनात्मक शासन और राजनीति के अध्ययन में समय–समय पर अनेक उतार–चढ़ाव आए हैं। 1950 व 1960 के दशक में तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन का प्रचलन बढ़ा तथा ऐतिहासिक व संस्थागत अध्ययन प्रणाली के स्थान पर अनुभववादी व मूल्य विहीन अध्ययन को अधिक बल दिया जाने लगा। अब तुलनात्मक शासन व राजनीति का अध्ययन केवल कुछ विकसित पश्चिमी देशों के अध्ययन तक ही सीमित नहीं रहा। उसमें नवोदित राज्यों व विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के अध्ययन को भी सम्मिलित कर लिया गया तथा राजनीतिक विकास, राजनीतिक आधुनिकीकरण व राजनीतिक संस्कृति पर अधिक बल दिया जाने लगा। 1970 व 1980 के दशक में राजनीतिक निर्भरता, राजनीतिक संस्कृति व राजनीतिक विकास जैसे सिद्धान्तों की आलोचना की जाने लगी तथा तुलनात्मक शासन व राजनीति के अध्ययन में सामान्य सिद्धान्त की खोज को असम्भव व अवांछनीय बताया जाने लगा।

प्रश्न उठता है कि तुलनात्मक शासन व राजनीति का भविष्य में क्या स्वरूप होगा? क्या भविष्य में इस क्षेत्र में उसी प्रकार 'सामान्य सिद्धान्त' ढूँढ़े जा सकेंगे जैसे कि 1960 व 1970 के दशकों में ढूँढे गए? क्या तुलनात्मक शासन व राजनीति का अध्ययन संस्कृति से परे रह कर किया जा सकता है? क्या वर्गीय धारणा अब व्यर्थ है या इसका कोई पर्याय हो सकता है? क्या अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय व प्रान्तीय स्तरों पर व्यापक समानताएँ ढूँढ़ी जा सकती है? क्या 1970 व 1980 के संकट के दौर से ऊपर उठा जा सकता है? क्या इक्कीसवीं शताब्दी में तुलनात्मक शासन व राजनीति के अध्ययन को और अधिक वैज्ञानिक बनाया जा सकता है, इत्यादि?

***असिस्टेंट प्रोफेसर (गेस्ट फैकल्टी), राजनीति विज्ञान विभाग, एम.एस.के.बी. कॉलेज, मुजफ्फरपुर। (बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर)**

तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन अतीत की देन है। यद्यपि सभी प्राकृतिक व सामाजिक विज्ञानों में तुलनात्मक विधि का प्रयोग होता है, तुलनात्मक शासन व राजनीति के अध्ययन में इसका विशेष महत्त्व है। इससे न केवल अन्य देशों की राजनीति को समझने में मदद मिलती है, अपितु स्वयं अपने देश की राजनीति को भी गहराई से समझने में मदद मिलती है। तुलनात्मक शासन व राजनीति के अध्ययन में केवल इस बात पर जोर नहीं दिया जाता कि कब क्या हुआ व कैसे हुआ, अपितु इस बात पर भी जोर दिया जाता है कि ऐसा क्यों हुआ व ऐसा क्यों नहीं हुआ। इस प्रकार जैसा कि आशा गुप्ता का कहना है, यह राजनीतिक संस्थाओं की क्रियाओं व प्रक्रियाओं को एक निश्चित सन्दर्भ में समझने में मदद करता है तथा भविष्य के लिए दिशा निर्धारित करने में भी सहायक सिद्ध होता है।[1]

यद्यपि सभी सामाजिक विज्ञान किसी न किसी रूप में अरस्तू के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं, किन्तु तुलानात्मक शासन व राजनीति अरस्तू को अपना पूर्वज कह सकने का विशेष अधिकार रखती है। अरस्तू पहला दार्शनिक था जिसने अपने समय के 158 संविधानों का तुलनात्मक अध्ययन किया व कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाले। उसने संविधान शब्द का व्यापक अर्थ लिया। उसका यह मानना था कि किसी भी संविधान मे केवल एक समाज की राजनीतिक संस्थाओं का उल्लेख मात्र नहीं होता, अपितु उसमें धन के वितरण, धार्मिक विश्वासों, शिक्षा अथवा नागरिकों की सुख–सुविधाओं का उल्लेख भी हो सकता है। वास्तव में, प्रत्येक संविधान में जीवन के प्रति विशिष्ट दृष्टिकोण अभिव्यक्त होता है।[2]

अरस्तू की अध्ययन प्रणाली क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक थी। इसके दो प्रमुख कारण थे– पहला, उसने सभी तथ्यों का अवलोकन ढाँचे के आधार पर किया तथा दूसरा उसने सभी समानताओं व असमानताओं की व्याख्या करने के लिए अनुकरण नियम, फैलाव नियम (लॉ ऑफ डियूजन) तथा समान कारण नियम का प्रयोग किया। उसने संख्या तथा उद्देश्यों के आधार पर सरकार के 6 रूप बताए तथा राजनीति को परिवर्तनशील माना। रोमन युग में सिसरों, पोलिबियस तथा टेसिटस इत्यादि विचारकों ने भी तुलनात्मक विधि को अपनाया, किन्तु इस युग में तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन को कोई विशेष बढ़ावा नहीं मिला।

सोलहवीं शताब्दी में मेकियावेली ने इस श्रृंखला को आगे बढ़ाया तथा तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन को गति प्रदान की। उसने 'शक्ति' को अपने अययन का केन्द्र बनाया तथा राजनीति को नैतिकता से अलग करने की कोशिश की। उसने राजनीति के विषय में व्यवहारवादी दृष्टिकोण अपनाया तथा अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिए भी साधनों को उचित बताया। कालान्तर में, मॉण्टेस्क्यू ने

राजनीति को समझने के लिए पर्यावरण को समझना जरूरी बताया। उसने राजनीतिक, सामाजिक–आर्थिक तथा ऐतिहासिक कारकों में सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा की। उसका यह दृढ़ विश्वास था कि मानवीय संस्थाओं, परम्पराओं अथवा कानूनों का किसी निश्चित समय अथवा स्थान पर जन्म नहीं होता, अपितु उनका क्रमिक विकास होता है।

अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दियों में अगस्त काम्टे, हार्विन, बेजहॉट, इत्यादि विद्वानों ने तुलनात्मक विधि के अपनाया तथा इतिहास के आधार पर राजनीति की व्याख्या की। काण्ट, हीगल, मार्क्स, इत्यादि विद्वानों ने सामाजिक गतिशीलता तथ विकासवादी सिद्धांत पर बल दिया। उन्नीसवीं शताब्दी में इतिहासवाद के स्थान पर व्यक्तिनिष्ठ राजनीतिक विश्लेषण को वरीयता दी जाने लगी तथा बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजनीति के अध्ययन में व्यवहारवादी दृष्टिकोण को सबसे अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। अब तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध राजनीतिक समाजशास्त्र, राजनीतिक अर्थशास्त्र तथा राजनीतिक संस्कृति के साथ जोड़ा जाने लगा। तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन पर अमरीकी संस्कृति का विशेष प्रभाव बना रहा। बीसवी शताब्दी के अन्तिम दशकों में विकासशील देशों के चिन्तकों ने अध्ययन में कुछ नए आयाम ढूँढ़ने के प्रयास किए। इन नए विकासशील की राजनीति को डेविड एप्टर के निवेश–निर्गत अथवा ऑलमण्ड के संरचनात्मक–कार्यत्मक विश्लेषण के आधार पर ही नहीं समझा जा सकता।

अब तो ऐसे प्रश्न उठाए जा रहे हैं कि क्या किसी भी देश की राजनीति या अर्थव्यवस्था में संस्थाएँ जरूरी हैं अथवा सरकार की कार्यक्षमता पर संस्थाओं का क्या प्रभाव पड़ता है, इत्यादि।3 जहाँ परम्परागत चिन्तन में ऐसा माना जाता था कि सरकार की कार्यक्षमता पर राजनीतिक संस्थाओं का प्रभाव पड़ता है, वहाँ आधुनिक चिन्तन में इस तथ्य को नकारा जा रहा है। कुछ विचारकों का कहना है कि कोई भी संस्था व्यापक सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक पर्यावरण में रहकर काम करती है, जबकि कुछ अन्य विचारकों का कहना है कि ये संस्थाएँ सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक पर्यावरण को भी प्रभावित कर सकती हैं। ये संस्थाएँ ही निर्धारित करती हैं कि किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में शक्तियों का बँटवारा कैसे होगा तथा राजनीतिक अभिनेता कौन होंगे। अब 'राज्य' को केन्द्र न मानकर 'पोलिटी' को केन्द्र माना जा रहा है। अतः राजकीय व संस्थागत केन्द्रों के स्थान पर गैर–राजनीतिक व अनौपचारिक सम्बन्धों को भी महत्त्व दिया जाने लगा है।

नई दिशाएँ : 1989 में बर्लिन दीवार के टूटने के साथ ही मानों विश्व राजनीति के रंगमंच पर ही पर्दा गिर गया। बदलते स्वरूप के अनुरूप ही तुलनात्मक शासन व राजनीति की प्रकृति व स्थिति में भी बदलाव आया। यह

पहले से अधिक व्यापक, किन्तु बिखरा हुआ प्रतीत होता है। इसका अर्थ यह नहीं कि तुलनात्मक शासन व राजनीति का भविष्य अन्धकारमय है। इसका अर्थ केवल इतना ही है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अब 'एक–ध्रुवीय' अथवा 'द्वि–ध्रुवीय' राजनीति का समय लद गया। अब 'बहु–ध्रुवीय' राजनीति का समय है, जिसमें सत्ता का केन्द्र कोई एक या दो शक्तिशाली देश अथवा गुट नहीं, अपितु अनेक देश व गुट हैं।

इसी प्रकार तुलनात्मक शासन व राजनीति के क्षेत्र में भी एकलवादी व समग्रवादी दृष्टिकोण के स्थान पर बहुलवादी व व्यापक दृष्टिकोण अपनाना होगा। आज सभी देशों पर अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था अथवा नई विश्व–व्यवस्था को ऊपर से थोपा नहीं जा सकता, अपितु आज आवश्यकता है अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति को प्रोत्साहित करने की ताकि विश्व में व्याप्त सामाजिक–आर्थिक,ऐतिहासिक–सांस्कृतिक अथवा राजनीतिक मतभेदों को भूला जा सके तथा विकास कि प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाया जा सके।[4] आज आवश्यकता है तुलनात्मक शासन व राजनीति के क्षेत्र में व्याप्त विभिन्न आयामों व अध्ययन पद्धतियों में बिखराव को सहने की।[5] यह उम्मीद करना व्यर्थ है कि निकट भविष्य में तुलनात्मक शासन व राजनीति के क्षेत्र में किसी न्यूटन, आइन्सटाइन, मार्क्स अथवा कीन्स रूपी नक्षत्र का उदय होगा।

यह कह पाना तुलनात्मक शासन व राजनीति के अध्यताओं के आत्म–विश्वास को दर्शता है, उसकी कमजोरी को नहीं। आज तुलनात्मक शासन व राजनीति न केवल राजनीति विज्ञान अपितु सामाजिक विज्ञानों की उप–शाखा बन चुका है। अतः तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति अथवा क्षेत्र की सुनिश्चित अथवा स्पष्ट व्याख्या नहीं की जा सकती। केवल इतना कहा जा सकता है कि तुलनात्मक शासन व राजनीति के अध्ययन के क्षेत्र का विस्तार हुआ है तथा इसके अध्ययन को यथासम्भव वैज्ञानिक बनाने के प्रयास जारी हैं। अब तुलनात्मक विधि का प्रयोग सोच समझकर व एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाने लगा है। साथ ही, राजनीतिक क्रियाओं अथवा प्रक्रियाओं की व्यापक स्तर पर अथवा स्थानीय स्तर पर तुलना करना भी एक कला बनती जा रही है। आज के दौर में जहाँ अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएँ राष्ट्रीय स्तर की घटनाओं को प्रभावित करती हैं, वहाँ स्थानीय समस्याओं व विषयों को अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण करते कोई देर नहीं लगती।

आज तुलनात्मक शासन व राजनीति का अध्ययन विभाजित, खण्डित तथा एकीकृत बनता जा रहा है। प्रत्येक अनुसन्धानकर्त्ता अपना निजी दृष्टिकोण रखता है तथा किसी विशेष कारण से तुलनात्मक शासन व राजनीति के अध्ययन में संलग्न हो सकता है। उनमें किसी 'बौद्धिक केन्द्रीयकरण' अथवा 'सामान्य खोज' की चाह दिखाई नहीं देती। इसी प्रकार कुछ अनुसन्धानकर्त्ताओं में अब तक के

तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययनों के प्रति विक्षोभ का भाव दिखाई देता है। उनका कहना है कि अब तक का अध्ययन क्षेत्रीय, संकीर्ण तथा अ–तुलनात्म्क था। इन पर विकसित पश्चिमी देशों, विशेषतः अमरीका, का अधिक प्रभाव था तथा विकासशील राज्यों की राजनीति के प्रति हीनता अथवा उदासीनता का भाव था।

अब तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन को अधिक व्यापक बनाने की अपेक्षा व्यक्तिगत देशों की राजनीति को गहराई से समझने की चेष्टा अधिक की जा रही है। इसके लिए नए आयाम व नए उपागम ढूँढ़े जा रहे हैं। शासन व राजनीति को समझने के लिए अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान का अधिक से अधिक सहारा लिया जा रहा है। परिणामस्वरूप तुलनात्मक राजनीति की नई उप–शाखाएँ फूट आई हैं, जैसे कि राजनीतिक–अर्थव्यवस्था, राजीतिक–समाजशास्त्र, राजनीतिक मानव–विज्ञान, इत्यादि। उदाहरण के लिए, अब राजनीतिक सत्ता के औपचारिक व अनौपचारिक सत्ता के केन्द्रों के समर्थन के लिए विभिन्न राजनीतिक, अ–राजनीतिक व गैर–राजनीतिक समूहों तथा गुटों के उदय व विकास पर अधिक जोर दिया जा रहा है।[6] इसी प्रकार अब राज्य की अपेक्षा राज्य तथा समाज के आपसी सम्बन्धों पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है।

इसी प्रकार तुलनात्मक शासन व राजनीति के अध्ययन के तरीकों में भी क्रान्ति आई है। जिस प्रकार 1950 व 1960 के दशक के तुलनात्मक शासन व राजनीति के ऐतिहासिक, कानूनी–संस्थागत तथा परम्परागत अध्ययन पद्धतियों को चुनौती दी गई तथा नई पद्धतियों को अपनाया गया, उसी प्रकार 1980 व 1990 के दशक तथा बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रयुक्त तुलनात्मक विधियों को एक बार पुनः चुनौती दी जाने लगी तथा आधुनिक उपागमों के 'दावों' तथा विफल उम्मीदों के प्रति असन्तोष जाहिर किया जाने लगा।[7] अब तुलनात्म्क राजनीति की प्रकृति, क्षेत्र व उद्देश्यों को लेकर 'सहमति की तलाश' को ही छोड़ दिया गया।

21वीं शताब्दी के तीसरे दशक की ओर अग्रसर तुलनात्मक विधि पहले से अधिक परिष्कृत बनती जा रही हे। इसमें 'संख्या' के स्थान पर 'गुणात्मक तुलनाओं' को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा है। अब तुलनात्मक शासन व राजनीति का विद्यार्थी मूल्य – विहीन अथवा निष्पक्ष अध्ययन का दावा नहीं करता, अपितु अपने मूल्यों, लक्ष्यों तथा अभिप्रायों को स्पष्ट करने का भी साहस रखता है। वह तर्क को अपना आधार बनाता है तथा अपने निष्कर्षों को दूसरों के अनुभवों के आधार पर बदलने के लिए भी तत्पर रहता है।

यद्यपि तुलनात्मक शासन व राजनीति का अध्ययन एक बहुत लम्बा रास्ता तय कर चुका है, यह अभी भी मन्जिल से कोसों दूर है। तुलनात्मक शासन व राजनीति के विषय में प्राप्त की गई जानकारी को क्रमबद्ध रूप प्रदान करना

अत्यधिक कठिन कार्य है। तुलनात्मक शासन व राजनीतिक के क्षेत्र में व्यापक विधिताएँ पाई जाती हैं–सिद्धान्तों में भी तथा अध्ययन पद्धतियों में भी। अब एक ही समस्या अथवा घटना को बिलकुल अलग दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया जा सकता है। यह साबित करना कठिन है कि कौन सा दृष्टिकोण सही है व कौन सा गलत। जब शासन व राजनीति को देखने का नजरिया ही अलग–अलग हो तो सामान्य निष्कर्षों तक कैसे पहुँचा जा सकता है?

अतः तुलनात्मक शासन व राजनीति के नए उपागमों, दृष्टिकोणों तथा उद्देश्यों को सामान्य प्रवृत्तियों तथा विशेषताओं के रूप में ही देखा जा सकता है। वे किसी निश्चित दिशा की ओर बढ़ने में सहायक सिद्ध नहीं हो सकतीं। इनमें लचीलेपन तथा निरन्तर बदलाव की सम्भावनाएँ बनी रहती हैं। तुलनात्मक शासन व राजनीति के अत्याधुनिक अध्ययन व सामान्य प्रवृत्तियों के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि सभी देश एक निश्चित दिशा की ओर आगे बढ़ रहे हैं, अथवा देर–सवेर सभी देशों में प्रजातन्त्र आ जाएगा अथवा सभी देश पश्चिमी आर्थिक विकास के रास्ते पर ही आगे बढ़ पाएँगे, इत्यादि। न ही परम्परागत व आधुनिक अध्ययन पद्धतियों में कोई विभाजन रेखा खींची जा सकती है और न ही तुलनात्मक शासन व राजनीति की कोई स्पष्ट परिभाषा की जा सकती है। शायद इसकी अब आवश्यकता भी नहीं।

सन्दर्भ सूची :

1. गुप्ता, आशा (1998), कम्पेरेटिव गवर्नमेंट एंड पॉलिटिक्स, गीतांजलि, न्यू दिल्ली, पृ. 17–34.
2. मैकरिडीस, राय.सी. (1955), द स्टडी ऑफ कम्पेरेटिव गवर्नमेंट, रैनडम, न्यूयॉर्क, पृ. 2.
3. आशा गुप्ता (1998), पूर्वोक्त.
4. उपरोक्त.
5. वर्बा, सिडनी (1992), 'कम्पेरेटिव पॉलिटिक्स : वेहर हैव वी वीन, वेटर आर. वी. गोइंग' इन हार्वर्ड जे. वियार्ग (एडिटेड) न्यू डायरेक्शन्स इन कम्पेरेटिव पॉलिटिक्स, वेस्ट व्यू, ऑक्सफोर्ड, पृ. 41.
6. सिटन, एस.ली. (1979), पॉलिटिकल एंथ्रोपालॉजी : द स्टेट ऑफ द आर्ट, माउंटन, हेग.
7. मेयर, लॉरेंस सी. (1989), रिडिफाइनिंग कम्पेरेटिव पॉलिटिक्स : प्रॉमिस वर्सेस परफार्मेंस, सेज, लंदन.